प्रवचन-१२९, श्लोक-१७३ से १७५, मंगलवार, ज्येष्ठ शुक्ल १०, दिनांक २०-०५-१९८०

नियमसार, आलोचना अधिकार १७३ श्लोक है।

शुद्धं तत्त्वं बुद्ध-लोक-त्रयं यद्,
बुद्ध्वा बुद्ध्वा निर्विकल्पं मुमुक्षुः।
तत्सिद्ध्यर्थं शुद्ध-शीलं चरित्वा
सिद्धिं यायात् सिद्धिसीमन्तिनीशः।।१७३।।

[श्लोकार्थः] मुमुक्षु जीव... जिसे मोक्ष की अभिलाषा, अन्तरतत्त्व की जिसे अभिलाषा है, उसे यहाँ मुमुक्षु कहते हैं। **मुमुक्षु जीव तीन लोक को जाननेवाले निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को भलीभाँति जानकर...** वहाँ राजकोट में प्रश्न हुआ था। ऐसा कि भगवान को तीन लोक के नाथ कहा है।....वह तो नहीं। तीन लोक के नाथ कहा है, वह जानने की अपेक्षा से। यहाँ कहा न, **तीन लोक को जाननेवाले...** उन्हें तीन लोक का नाथ कहा जाता है। वे कहाँ किसी के...

तीन लोक को जाननेवाले... कौन? कि निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व, निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व भेदरहित अभेद तत्त्व अन्दर, उसे यहाँ निर्विकल्प तत्त्व कहते हैं। जिसमें भेद नहीं। यह गुण और यह गुणी, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। ऐसा जो अभेद तत्त्व, उसे जानकर। **तीन लोक को जाननेवाले निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को भलीभाँति जानकर...** ऐसा कहा। आहाहा! **उसकी सिद्धि के हेतु...** उसकी पूर्ण प्राप्ति के लिये **शुद्ध शील का (चारित्र का) आचरण करके,...** जानकर पहले कहा, पश्चात् आचरण कर कहा। जाने बिना किसका आचरण? शुद्ध आत्मा आनन्दस्वरूप, अनन्त गुण से भरपूर चैतन्य रत्नाकर देव है। उसे जानकर। उसे जानकर कब होगा? परसन्मुख के झुकाव को छोड़कर, राग को-संयोग को-भेद को छोड़कर अन्तर अभेद चीज़ है, उसे जानकर, उसका ज्ञान करके। पश्चात् चारित्र। शुद्ध शील वापस। चारित्र वह शुद्ध। पंच महाव्रतादि, वह नहीं। इससे यह शब्द लिया है। पंच महाव्रतादि नहीं। शुद्ध शील। आहाहा!

ज्ञानस्वरूपी भगवान, अत्यन्त अभेद शुद्ध का ज्ञान करके उसमें रमना, चरना, इसका नाम शुद्धचारित्र है। शुद्ध शील। शील अर्थात् चारित्र। ऐसे **शुद्ध शील का (चारित्र**

का) आचरण करके, सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है... आहाहा! मुक्तिरूपी पूर्ण दशा का वह स्वामी होता है, ऐसा कहते हैं। मुक्तिरूपी पूर्ण दशा उस शुद्ध तत्त्व को जानकर उसमें शील अर्थात् आचरण करके मुक्तिरूपी परिणति को प्राप्त होते हैं। इसलिए उसे स्त्री का स्वामी कहा है। **सिद्धि को प्राप्त करता है।** कहा न? **सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है...** अर्थात् क्या? **सिद्धि को प्राप्त करता है।** आहा! तत्त्व की भी बात की, उपाय की भी कही और उपेय की भी कही। एक श्लोक में तीनों आ गये। अन्दर शुद्ध अभेद चैतन्य, वह तत्त्व; उसे जानकर, यह सम्यग्ज्ञान। जानकर माना, वह सम्यग्दर्शन और उसमें शुद्ध शील, स्वरूप में आचरण अन्दर चारित्र। आहाहा! चारित्र अर्थात् मोक्ष का मार्ग। ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ये तीन मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है—सिद्धि को प्राप्त करता है। एक श्लोक में तो बहुत अधिक आ गया। बाह्य क्रियाकाण्ड से तथा बाह्य शास्त्र के अकेले ज्ञान से वह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। वस्तु है, पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। उसे प्राप्त करने के लिये तो उसकी सन्मुखता और संयोग राग और पर्याय की विमुखता (होनी चाहिए)। द्रव्यस्वभाव की सन्मुखता। संयोग—देव-गुरु-शास्त्र संयोग में भले हो। आहाहा! उनसे भी रहित। उनके प्रति राग है, उससे भी रहित और राग में, पर्याय में जो ज्ञान होता है, उस पर्याय से भी रहित। आहाहा! त्रिकाली जो शुद्ध तत्त्व है, उसे जानकर-मानकर आचरण, यह सिद्धि का कारण है। यह मुक्ति का कारण है। आहाहा! १७३ श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-१७४

(स्रग्धरा)

सानन्दं तत्त्वमज्जज्जिनमुनिहृदयाम्भोजकिञ्जल्कमध्ये,
निर्व्याबाधं विशुद्धं स्मरशरगहनानीकदावाग्निरूपम्।
शुद्धज्ञान-प्रदीप-प्रहत-यमिमनोगेह-घोरान्धकारं,
तद्वन्दे साधुवन्द्यं जननजलनिधौ लङ्घने यानपात्रम्।।१७४।।

(वीरछन्द)

तत्त्व मग्न जिनमुनि के हृदय कमल की केसर में सानन्द।
सदा विराजित है, जो बाधा रहित, विशुद्ध सदा चिद्घन॥
कामदेव शर सेना को जो दावानल-सम भस्म करे।
शुद्धज्ञान दीपक द्वारा मुनि-मन-गृह-तम का नाश करे॥
भवसागर से पार गमन को जो है सुन्दर नौका-सम।
साधुजनों से वन्दनीय उस शुद्धतत्त्व को करूँ नमन॥१७४॥

[श्लोकार्थः] तत्त्व में मग्न ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है, जो बाधारहित है, जो विशुद्ध है, जो कामदेव के बाणों की गहन (-दुर्भेद्य) सेना को जला देने के लिए दावानल समान है और जिसने शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है, उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप उस शुद्ध तत्त्व को—मैं वन्दन करता हूँ॥१७४॥

श्लोक -१७४ पर प्रवचन

सानन्दं तत्त्वमज्जज्जिनमुनिहृदयाम्भोजकिञ्जल्कमध्ये,
निर्व्याबाधं विशुद्धं स्मरशरगहनानीकदावाग्निरूपम्।
शुद्धज्ञान-प्रदीप-प्रहत-यमिमनोगेह-घोरान्धकारं,
तद्वन्दे साधुवन्द्यं जननजलनिधौ लङ्घने यानपात्रम्॥१७४॥

[श्लोकार्थः] तत्त्व में मग्न ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,... आहाहा! अकेला मक्खन है। अन्दर में—तत्त्व में जो मग्न है। चैतन्यतत्त्व, ध्रुव अनन्त गुण से एकरूप, ऐसे तत्त्व में जो मग्न है। ऐसे **जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,...** केसर जैसे फूल में होती है, उसी प्रकार यह प्रगट आनन्द की दशा सहित विराजते हैं। आहाहा! **तत्त्व में मग्न ऐसे जिनमुनि...** यह कहीं मुनि क्रिया करे, महाव्रत पाले, वह नहीं। यह तो **तत्त्व में मग्न...** आहाहा! **ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,...**

आहाहा! जैसे कमल में केसर बाहर आवे; उसी प्रकार इस हृदय में भगवान आत्मा आनन्दसहित बाहर आता है। उसकी दृष्टि करने पर, उसका आदर करने पर अतीन्द्रिय आनन्द के केसरसहित बाहर आता है। शक्तिरूप रहता है, ऐसा नहीं। आहाहा! तत्त्व में अन्तर एकाग्र होने पर अन्तर के आनन्द का, जैसे कमल में केसर होती है, वैसे आत्मा में आनन्दसहित वह आत्मा बाहर आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सबकी बात एक है। चाबी एक है, चाबी। लड़का बोला था। सिद्धप्रकाश है न! सबकी चाबी एक है, ऐसा बोला था। आत्मा की एक ही चाबी है कि अन्दर त्रिकाल स्वभाव की ओर जाना।

अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! केसर बाहर आती है न? कमल में शक्तिरूप नहीं रहता, केसर बाहर आती है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति से भरपूर, उसे जानकर **हृदयकमल की केसर में...** हृदयकमल में उस आनन्द का स्फुरण होता है। **जो आनन्द सहित विराजमान है,...** आहाहा! परन्तु किसे? कहते हैं। तत्त्व में मग्न ऐसे को। तत्त्व जो आत्मा भगवानस्वरूप... आहाहा! कैसे जँचे? अभी भगवान! भगवान तो कब होगा? आहाहा! भगवान ही है। यदि भगवान न हो तो भगवानपना आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है?

भगवानस्वरूप आत्मा ऐसे तत्त्व में जो मग्न है - ऐसा कहा। **ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,...** वह जीव लिया है। आलोचना में। आलोचना अर्थात् जीव को देखनेवाला और जीव में मग्न, वह आलोचना है। आलोचना अधिकार है न? आहाहा! वह तत्त्व जो है, उसे देखता है, उसे जानता है, उसमें मग्न है, उसे आनन्दसहित आत्मा विराजता है। प्रगट आनन्दसहित विराजता है। आहाहा! **जो बाधारहित है,...** जिसे कोई विघ्न नहीं है। ऐसा उस आत्मा का स्वरूप है, जो तत्त्व में मग्न है, कि जिसे कोई बाधा नहीं है। कोई विघ्न है ही नहीं कि कर्म का कठोर उदय आयेगा तो ऐसा होगा और वैसा होगा। तत्त्व में मग्न पुरुषार्थी को किसी प्रकार का विघ्न अन्तर में नहीं आता। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! अभी तो सब क्रियाकाण्ड में उतार डाला। दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो। उसमें भक्ति... आहाहा!

तत्त्व जो अन्दर है और कहते हैं कि जो तत्त्व में मग्न है। **ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की...** आहाहा! कमल में जैसे केसर (होती है), वैसे आनन्दसहित विराजमान

है। आहाहा! परन्तु जो तत्त्व में मग्न है, उसे आनन्दसहित विराजमान है। वैसे तो आत्मा आनन्दसहित त्रिकाल है, परन्तु अन्दर में मग्न (हुए) बिना पर्याय में आनन्द नहीं आता। आहाहा! ऐसा उपदेश। साधन क्या होगा? यह साधन। तत्त्व को जानना, मानना और स्थिर होना, यह उसका साधन है। मुक्ति का यह साधन है। आहाहा!

जो बाधारहित है, जो विशुद्ध है,... जो विशुद्ध है। विशुद्ध अर्थ में तो शुभभाव में भी आता है और शुद्ध में भी ऐसा अर्थ आता है। यहाँ शुद्ध के अर्थ में विशुद्ध है। विशुद्ध है - अकेला निर्मल शुद्ध है। **जो कामदेव के बाणों की गहन (-दुर्भेद्य) सेना को जला देने के लिए...** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? कि जो बाह्य की सुन्दरता देखकर, पाँचों ही इन्द्रियों के विषयों में ऐसी सुन्दरता, शरीर की सुन्दरता को देखकर जो काम उत्पन्न होता है, ऐसे कामबाण को तो नाश कर डाले, ऐसा है। आहाहा! **कामदेव...** ले, अब उसे देव कहा। **कामदेव के बाणों...** आहाहा! कुछ रूपवान शरीर देखे, रूपवान कोई चीज़ देखे, अन्दर में चोट लग जाए। यह ठीक है, वहाँ रुक जाए, यह कामदेव का बाण है। आहाहा! पाँचों इन्द्रिय की ओर की अनुकूल चीज़ को देखकर, उसमें राग की उत्पत्ति करके अन्दर रुक जाना, वह कामदेव का बाण है। उसे यह नष्ट कर डालता है।

कामदेव के बाणों की गहन (-दुर्भेद्य) सेना... अर्थात् कि... आहाहा! आँख से देखना, कान से सुनना इत्यादि पाँच इन्द्रियों की अन्दर बहुत ही प्रीति और प्रेम उत्पन्न हो, वह उसे दुर्भेद्य है। आहाहा! उसका नाश करना। दुर्भेद्य ऐसी सेना। आहाहा! जवान शरीर हो, इन्द्रियाँ पुष्ट हों, आहार और पैसा-साधन हो (तो) अन्दर से फट निकले, (अभिमान में आ जाए) मानो बस, हम यह हैं, हम सुखी हैं। आहाहा! ऐसे पाँच इन्द्रिय के बाण जो हैं, उन्हें वह बाण कैसे हैं? दुर्भेद्य। नाश करना कठिन है। आहाहा! उन्हें भेद करना (कठिन है)। आहाहा! अपनी कीर्ति सुने, इज्जत सुने, वहाँ अन्दर में इसे गलगलिया होता है। आहाहा! उसकी जहाँ महिमा सुने, यह सब काम के बाण हैं। दुर्भेद्य है। उनका भेद-नाश करना मुश्किल है, दुष्कर है।

तथापि उसकी **सेना को जला देने के लिए...** आहाहा! तत्त्व ऐसा है। भगवान चैतन्यतत्त्व अतीन्द्रिय आनन्द का तत्त्व (ऐसा है) कि काम की सेना जो दुर्भेद्य है, उसे भी जला डालने को समर्थ है। **जला देने के लिए दावानल समान है...** साधारण अग्नि

नहीं। आहाहा! जैसे जंगल में दावानल हो और बड़े-बड़े वृक्षों को जला डाले। सूखे और हरे... आहाहा! दावानल हरे और सूखे को जलाकर राख कर डालता है; उसी प्रकार आत्मा का-तत्त्व का मग्नपना अन्दर... आहाहा! **दावानल समान है...** आहाहा! काम की सेना दुर्भेद्य होने पर भी उसे जला डालने में समर्थ है। आहाहा! यह आलोचना... यह आलोचना। मुख से गुरु को कहना कि मुझे ऐसा हुआ, वैसा हुआ, वह सब विकल्प की आलोचना है। यह तो निर्विकल्प आलोचना है। आहाहा!

और जिसने शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा... आहाहा! शुद्ध सम्यग्ज्ञान द्वारा, चैतन्य प्रकाश द्वारा अन्दर के तत्त्व को पकड़ने से उसका-चैतन्य का प्रकाश प्रगट हुआ। उस चैतन्य के प्रकाश द्वारा, **दीपक द्वारा मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है,....** आहाहा! जो भगवान चैतन्य अन्दर है, उसका जिसने आदर किया, उसे चैतन्य के प्रकाश द्वारा, मुनियों के हृदय में जो अन्धकार है, उसका उसने नाश किया। घोर अन्धकार का नाश किया। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनियों के मनोगृह में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले दुर्भेद्य कहा था। कहते हैं कि परन्तु है घोर। आहाहा! घोर अन्धकार। मोहरूपी घोर अन्धकार। वह चैतन्य के तत्त्व के अवलम्बन से दावानल समान चैतन्य भगवान काम की सेना को जलाने में समर्थ है। आहाहा! इन्द्र की इन्द्राणी आकर भी यदि डिगाने आवे तो कहते हैं कि आत्मा समर्थ है। उस कामबाण की सेना के लिये दावानल समान है। आहाहा! वह कैसा? घोर दावानल। आहाहा!

घोर अन्धकार का नाश किया है,... आहाहा! **उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य...** आहाहा! ऐसा तत्त्व है, वह सन्तों द्वारा वन्दनीय है, साधुओं द्वारा आदरणीय है। आहाहा! **साधुओं द्वारा वन्द्य तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में...** आहाहा! जन्मरूपी अर्णव अर्थात् समुद्र, उसे **लाँघ जाने में...** शुद्ध तत्त्व का आश्रय उस **जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप...** जैसे समुद्र में नाव से तैरकर जाते हैं। नाव-नाव, नौका। आहाहा! **साधुओं द्वारा वन्द्य...** भावलिंगी साधु। जिन्हें भाव आनन्द का लिंग / चिह्न प्रगट हुआ है। आहाहा! वह जिनकी केसर है। जैसे कमल में केसर (होती है वैसे)। वह दुर्भेद्य कामबाण होने पर भी, सन्तों को वन्दनीय है और जन्मार्णव को लांघ जाने पर... आहाहा! जन्मरूपी समुद्र, जन्म-

मरण... जन्म-मरण... जन्म-मरण... एक जन्म हो वहाँ मरे, वहाँ दूसरा जन्म, दूसरा मरे वहाँ तीसरा जन्म। ऐसे अनन्त-अनन्त मरण। यह पाँच-पच्चीस-पचास वर्ष स्थिति की अवधि कितनी? सौ वर्ष की लो न! अवधि कितनी अनन्त काल के सामने? ऐसे सौ-सौ वर्ष की जिन्दगी। जन्मरूपी अर्णव संसार... आहाहा! **लाँघ जाने में नौकारूप...** है। पानी का बड़ा समुद्र भरा हो, उसमें नाव होवे तो नाव से उसे तिर सकते हैं। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अपने स्वरूप में लीन होकर और मोहन्धकार का नाश कर सकता है। आहाहा! इसमें बाहर का क्या करना कुछ आता नहीं। यह क्रिया करना या... आहाहा!

जड़ की क्रिया तो आत्मा कर नहीं सकता। अन्दर अशुद्ध परिणाम के रागादि आते हैं, वह तो दुःख और आकुलता है। उन्हें तो छेदने के लिये यह आलोचना अर्थात् जीव को देखना, अन्दर देखना कि यह है कौन परन्तु? आहाहा! मुनि के हृदयकमल में... आहाहा! **मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है, उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में...** आहाहा! संसार के भव करने के परिणाम से लाँघ गया है। जिस भाव से भव मिले, उस भाव से उल्लंघ गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुनिराज पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल के श्रोता को कहते हैं या चौथे काल के हैं? आहाहा! प्रभु! तुझमें तैयारी इतनी है... आहाहा! उसके सन्मुख देख और उसमें स्थिर हो। आहाहा! मनोगृह का, मोह के अन्धकार का नाश हो जाए ऐसा है। मोह रहे नहीं। एक अंश भी मोह का नहीं रहे। जैसे समुद्र में नौका से तिरा जा सकता है, वैसे प्रभु के आश्रय से मोह के अन्धकार को तिरा जा सकता है। आहाहा!

उस शुद्ध तत्त्व को... मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। ऐसे **तत्त्व को—मैं वन्दन करता हूँ।** पाँच परमेष्ठी को वन्दन करता हूँ, यह बात नहीं ली। आहाहा! क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! ऐसे तत्त्व को... आहाहा! **उस शुद्ध तत्त्व को...** जिस तत्त्व में मोह का नाश करने की सामर्थ्य है। दुर्भेद्य होने पर भी जिसे भेद डाले, ऐसी सामर्थ्य है। रागादि भेद करना, नाश करना दुर्भेद्य है। उसे जला डालने को समर्थ है, ऐसा जो तत्त्व। ऐसे तत्त्व को मैं वन्दन करता हूँ। उसे मैं वन्दन करता हूँ, ऐसी भाषा है। यह आलोचना। आहाहा! यह अगम्य-गम्य की बातें हैं। अलक-मलक की नहीं। आहाहा! अगम्य - जो अनादि से गम्य हुआ नहीं, उसे गम्य करने का यह अधिकार है। आहाहा! एक-एक श्लोक बहुत

तत्त्व से भरपूर है। आहाहा! ऐसे **उस शुद्ध तत्त्व को...** अर्थात् जो साधु द्वारा वन्द्य है, जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप है, जो मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार को नाश करने में समर्थ है, ऐसा जो शुद्ध तत्त्व है, उसे मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : आत्मा तो अकर्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता है और अकर्ता है, दोनों है। राग का अकर्ता है और स्वरूप की पर्याय का कर्ता है तथा एक न्याय से तो शुद्धपर्याय का भी कर्ता नहीं। पर्याय, पर्याय से होती है। यहाँ एक साथ अभेद करके समझाना है न? ऐसा कर डाले कि आत्मा पर्याय को छेद डालता है। छेद डालता है, वह तो राग के लिये है। निर्मल पर्याय को छेदता है? निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उसका आश्रय तत्त्व है। धर्म की निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, उसका आश्रय स्वतन्त्र पर्याय कर्ता हुई और ध्रुव का आश्रय लेती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! इसलिए पर्याय भी स्वतन्त्र है। जो निर्मल पर्याय है, वह स्वतन्त्र है। वह पर्याय पर्याय को वांदे है। पर्याय ध्रुव को वांदे छे। वांदे छे तो दोनों को। समझ में आया? आहाहा! दोनों का आदर है। ध्रुव का आदर है और ध्रुव के आदर से प्रगट हुई दशा का भी आदर है। आहाहा! ऐसी बात आती है, वहाँ लोगों को (ऐसा लगता है कि) अकेली निश्चय की बात है, वहाँ तो निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् सच्चा। व्यवहार अर्थात् आरोपित। आहाहा! ऐसे सत् को प्रभु! तूने सुना नहीं।

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है। उसे शरीरप्रमाण देखने पर इसे ऐसा लगता है कि इतना बड़ा यहाँ होगा? भले अवगाहन शरीरप्रमाण हो, तथापि उसका स्वभाव है, वह तो अपार है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान। अनन्त अर्थात् जिसमें अन्त नहीं। इतना ज्ञान, दर्शन और शान्ति भरी है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... का आश्रय लेनेवाले को शान्ति प्राप्त हो, ऐसा है; बाकी शान्ति कहीं से मिले, ऐसी नहीं है। आहाहा! वहाँ प्रश्न बहुत हुए हैं। ऐसा कि यह शुभभाव करते हैं, उसमें जरा शान्ति लगती है न? चन्दुभाई प्रश्न करते थे, बहुत करते थे। शुभभाव में जरा शान्ति लगती है अर्थात् क्या? शान्ति नहीं और लगती है, यह कहाँ से आया? शुभभाव तो अशान्ति है, शुभभाव तो आकुलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुर्भेद्य तो कहा। हो सकनेयोग्य है। कठिन परन्तु अशक्य नहीं। हो सकता नहीं, ऐसा कठिन नहीं। अभी आगे कहेंगे। यह सरल है, ऐसा कहेंगे। इसमें है न? १७६, १७६। **निरन्तर सुलभ है...** १७६ कलश। आहाहा! है? १७६ कलश की दूसरी लाईन। उसकी शुरुआत में **जो निरन्तर सुलभ है...** भगवान। आहाहा! श्रीमद् में भी आता है। सत्, सत् है; सरल है, सर्वत्र है। यह बतलानेवाले चाहिए, इतना (विशेष कहा)। आहाहा! यहाँ तो कहा कि सत् निरन्तर सुलभ है। ऐसा नहीं कहा कि वह प्राप्त नहीं होता। आहाहा! स्वयं ही इसने महँगा है, ऐसा मानकर अन्दर में पुरुषार्थ नहीं कर सकता। नहीं तो जो निरन्तर सुलभ है। आहाहा!

मुमुक्षु : बोधिदुर्लभ भावना क्यों कही?

पूज्य गुरुदेवश्री : बोधिदुर्लभ भावना अपेक्षा से है। यह तो पहले कहा, दुर्भेद्य है। किसलिए? भेदना दुर्लभ है, परन्तु हो सकता है। हो सके, ऐसा वह तत्त्व है। तत्त्व के सन्मुख देखने पर वह कोई रह सके, उससे विरुद्ध भाव कोई रह सके, यह ताकत नहीं है, ऐसा वह तत्त्व है। जिसके तत्त्व के प्रकाश के आदर और स्वभाव के सत्कार के समक्ष, उससे विरुद्ध का भाव खड़ा नहीं रह सकता, ऐसा वह तत्त्व है। विश्वास आना चाहिए न! आहाहा!

यहाँ तो सन्त बात करते हैं, वह अपनी है, वह बात दूसरे को करते हैं। भाई! यह हो सकता है। यह तू लाख करके (पर को) अपना मानना चाहे तो अनन्त काल हुआ तो नहीं होगा और राग का कण भी मेरा मानना चाहेगा तो अनन्त काल हुआ तो भी नहीं होगा। समझ में आया? दया, दान का विकल्प उठता है, उसे अपना करना चाहेगा तो तीन काल में नहीं होगा। आहाहा! परन्तु यह हो सकेगा, इसलिए सुलभ कहा है। आहाहा! कहो, चेतनजी! सुलभ कहा है, वह किस प्रकार? अनन्त काल हुआ, प्रभु! राग के कण को मेरा मानने में प्रयत्न कर रहा है परन्तु कभी राग का कण इसका होगा नहीं। राग और आत्मा के बीच तो सन्धि है। आहाहा! वह सन्धि कभी तोड़कर राग एकत्व नहीं होता परन्तु राग को तोड़कर भगवान आत्मा पूर्णानन्द को प्राप्त कर सके, ऐसा वह निरन्तर सुलभ है। आहाहा! अरे रे! बात सुनी कहाँ है? इसके घर के अन्दर में घर में क्या भरा है? ताला लगाया है। दया, दान इत्यादि राग और राग के फल देखकर हर्षित हो गया है और आत्मा के अन्तरस्वभाव को ताला लगाया है। आहाहा! यह फिर १७६ में आयेगा। **निरन्तर सुलभ है...** आहाहा!

श्लोक-१७५

(हरिणी)

अभिनवमिदं पापं याया: समग्रधियोऽपि ये,
विदधति परं ब्रूम: किं ते तपस्विन एव हि।
हृदि विलसितं शुद्धं ज्ञानं च पिण्ड-मनुत्तमं,
पदमिदमहो ज्ञात्वा भूयोऽपि यान्ति सरागताम्।।१७५।।

(वीरछन्द)

बुद्धिमान हैं फिर भी 'अभिनव पाप करो' दें यह उपदेश।
क्या वे तपसी हैं ? हम पूछें, अरे हमें है अतिशय खेद॥
उर में विलसित शुद्धज्ञानमय सर्वोत्तम इस पद को जान।
पुनः सरागी होते हैं वे भव भव में दुःख सहें महान॥१७५॥

[श्लोकार्थः] हम पूछते हैं कि—जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश देते हैं, वे क्या वास्तव में तपस्वी हैं ? अहो! खेद है कि वे हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम *पिण्डरूप इस पद को जानकर पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं॥१७५॥

श्लोक -१७५ पर प्रवचन

अब, १७५।

अभिनवमिदं पापं याया: समग्रधियोऽपि ये,
विदधति परं ब्रूम: किं ते तपस्विन एव हि।
हृदि विलसितं शुद्धं ज्ञानं च पिण्ड-मनुत्तमं,
पदमिदमहो ज्ञात्वा भूयोऽपि यान्ति सरागताम्।।१७५।।

* पिण्ड=(१) पदार्थ; (२) बल।

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं।

[श्लोकार्थः] अरे! **हम पूछते हैं कि—जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी...** बहुत जानपना धारा है, ऐसा होने पर भी, ऐसा कहते हैं। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा, बातें करना तो बहुत आयी। आहाहा! **जो समग्र बुद्धिमान होनेवाले...** बुद्धि में तो मानों ऐसी बातें करने बैठे जैसे... आहाहा! मानो चतुर का पुत्र उतरा। भगवान! **जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश (कैसे) देते हैं,...** आहाहा! इस राग को कर, ऐसा कैसे उपदेश देते हैं वे? यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! **हम पूछते हैं कि—जो...** बहुत बुद्धिवाले कहलाते हैं। ऐसा (होने) पर भी राग कर, पुण्य कर, उससे तुझे लाभ (होगा, ऐसा कहते हैं)। यह तुझे क्या है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जो समग्र बुद्धिमान होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर'...** आहाहा!

मुमुक्षु : नया पाप कर अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर अर्थात् इस राग को अपना मान, ऐसा कर। राग से लाभ होगा, ऐसा कर। यह तुझे क्या हुआ? ऐसा कहते हैं। चेतनजी! आहाहा! ऐसी बात है। प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न! उसमें शुभराग भी पाप है। आकुलता है, वह कर, तुझे यह कहाँ से सूझा? तूने बहुत सुना और बहुत धारणा की है न? शास्त्र का समग्र बुद्धिवाला हुआ है न! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा करके मशकरी की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मशकरी, उसे उड़ा दिया। तू धर्म में है ही नहीं, जा। नालायक है। जानपने की सब बड़ी-बड़ी बातें करना आता है और तत्त्व की दृष्टि का आदर नहीं। उसकी बात करते हैं, तब तुझे अन्दर लगती है यह तो सूक्ष्म है, यह तो दूसरी बात है परन्तु यह स्थूल बात तुझे सरल लगती है। हुआ क्या है? मिथ्यात्व की मदिरा पी है। ऐसी बात है। यह तो दिगम्बर सन्तों की बातें, बापू! आहाहा! कहीं है नहीं। दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है परन्तु यह कठिन नहीं लगता।

मैं एक चैतन्यमूर्ति, तूने बहुत जानपना किया। यह जानपना किया तो भी... चैतन्य

का नहीं। जानपना किया सब धारणा का। तथा और नया पाप कर, जो आत्मा नहीं, ऐसे पुण्य, नया पाप कर... आहाहा! मुनि उछल गये हैं। आहाहा! भगवान वीतरागमूर्ति है न, प्रभु! तूने जानपना बहुत किया, तथापि तू वीतरागमूर्ति को न आदर करते हुए, जो आत्मा में नहीं है, ऐसे राग को नया कर, यह तुझे क्या हुआ? आहाहा!

ऐसा उपदेश देते हैं, वे क्या वास्तव में तपस्वी हैं? या मुनि हैं? राग जो स्वरूप में नहीं है, उसे नया कर। उसमें नहीं है, उसे नया कर, तो उससे तुझे लाभ होगा। पहले यह आवे और आवे तो इससे लाभ होगा, ऐसी बातें तू क्यों करने लगा है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह तो दूसरी बातें हैं, बापू! आहाहा! वे क्या वास्तव में मुनि हैं? जो व्यवहार के राग को आदरणीय मनाते हैं, ऐसे नये पाप कराते हैं, वे क्या मुनि हैं? आहाहा! ऐसी बात है। उसमें है या नहीं? आहाहा! प्रभु! तू अनादि सनातन शान्ति का सागर है, प्रभु! उसका तूने जानपना किया नहीं और बातें करने की बातों का जानपना किया। और उस जानपने में और तूने ऐसा ठहराया कि भाई! शुभ हुए बिना चलेगा नहीं। शुभ बिना तो अन्दर जाया नहीं जाएगा। सीधे जाते होंगे?

मुमुक्षु : वह आँगन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आँगन है। अरे! यह तुझे क्या हुआ? आहाहा! उसे उल्लंघ कर प्राप्त होता है, उससे नहीं होता। शुभभाव से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। लाख भक्ति करे और करोड़ों रुपये खर्च करके मन्दिर बनावे और व्रत छह-छह महीने के अपवास करे, उससे प्राप्ति नहीं होती। यह तुझे क्या हुआ? मुनि होकर यह नया पाप करने का तुझे कहाँ से सूझा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न! ऐसा उपदेश देता है, ऐसा कहा न? आहाहा! व्यवहार राग का भाव (का) उपदेश देता है। राग से कल्याण होगा, तूने नयी बात निकाली, ऐसा उपदेश? शुभ करते-करते कल्याण होगा।

मुमुक्षु : इस काल में तो शुभ ही हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और बेचारा... अरे रे! आहाहा! मुनि को इस काल में तो शुभयोग ही होता है, ऐसा कहते हैं श्रुतसागर हैं। शान्तिसागर के पथगामी। वे ऐसा कहते हैं। प्रभु... प्रभु... प्रभु! ऐसा तुझे कहाँ से सूझा, भाई! यह तूने जानपना सब किया। उन्हें

जानपना बहुत है। क्षयोपशम धर्मसागर की अपेक्षा उन्हें विशेष है। शान्तिसागर के पट्टाधीश आये हैं न? उनकी अपेक्षा इन्हें... पद नहीं आया, वे अलग पड़ गये। वांचन, (बहुत) परन्तु यह वांचन करके ऐसी बात स्थापित करना? अरे रे! कि अभी तो शुभयोग ही होगा। शुभपरिणाम। ऐसा उपदेश किया! अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! तू आत्मा है, प्रभु! इस शुभपरिणाम से तुझे लाभ होगा, ऐसा मानेगा तो मिथ्यात्व का दु:ख होगा और भगवान! तुझे दु:ख हो, यह कोई इच्छेगा?

सभी आत्माएँ भगवान हैं। सुखी होओ। आत्मा के अन्दर में जाकर सुखी होओ। दु:खी होओ, यह बात अन्दर नहीं होती। आहाहा! किसी के प्रति हल्का, बैर और विरुद्ध नहीं होता। किसी प्राणी के प्रति हल्का माने, ऐसा नहीं होता। जिसने स्वयं को पूर्ण माना है, वह दूसरे को हल्का कैसे कहे? आहाहा! प्रभु! तू बड़ा है, भाई! दूसरी बातें करके पाप से धर्म होगा, यह पुण्य भी वास्तव में पाप है। आहाहा! 'पाप पाप तो सब कहे परन्तु अनुभवी पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव के दोहे में आता है। आहाहा! वे यह कहना चाहते हैं, हों! यह तुझे नया कहाँ से सूझा? यह तो अनादि से प्राप्ति है। आहाहा!

जो समग्र बुद्धिमान... मानो सब जानपना करके, शास्त्र पढ़े... आहाहा! **दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश देते हैं,...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो मन्दिर बनाने की बात में बात की। बोधपाहुड़ में छहकाय की दया की बातें की। क्योंकि उसमें जरा हिंसा है। मन्दिर बने, उसमें पानी, पृथ्वी यह ख्याल में लेकर बोध में डाला है। छहकाय की रक्षा कैसे हो, वह मैं बात करूँगा। आहाहा! उसमें जरा छहकाय का आता है न? आहाहा! मन्दिर बनाने में पृथ्वी, पानी, वायु, अग्नि, वनस्पति का वहाँ घात होता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि बिल्कुल बाहर में जाना ही नहीं, ऐसी स्थिति बतानी है। यह बात छोड़ दे। अमुक करूँ, अमुक करूँ, यह छोड़ दे। आहाहा! यह तो छहकाय की रक्षा की बात ही की है। उसमें से कोई भी प्राणी-पृथ्वी, पानी को जरा भी पीड़ा हो, यह बात अब नहीं करूँ। बोधपाहुड़ में कहा। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि तू मुनि होकर... आहाहा! वे क्या वास्तव में मुनि हैं? जो कोई शुभराग और हिंसा आदि से धर्म मनाते हैं।

मुमुक्षु : धर्म न मनावे परन्तु आँगन मनावे तो बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आँगन में कहाँ है? वह आँगन भी नहीं है। आँगन लाँघ जाए,

तब उसे आँगन कहा जाता है। तलहटी को लाँघ जाए और ऊपर जाए, तब नीचे को तलहटी कहा जाता है। यह पर्वत के ऊपर चढ़ते हैं न? वहीं के वहीं खड़ा हो उसे तलहटी कहा जाएगा? आहाहा! ऊपर चढ़े, तब नीचे तलहटी कहा जाता है। इसी प्रकार शुभ को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, तब शुभभाव था, उसका ज्ञान करे, परन्तु उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा उपदेश तूने कहाँ से निकाला? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं कि) वे क्या वास्तव में मुनि हैं? आहाहा!

अहो! खेद है... आहाहा! **कि वे हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्डरूप...** चैतन्यपिण्ड। **इस पद को जानकर पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं।** देखा? आहाहा! भगवान (आत्मा) अन्दर **विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्डरूप...** चैतन्यपिण्ड, चैतन्यपदार्थ। चैतन्य दल पदार्थ अकेला दल ही जिसका चैतन्य का है। उसमें चैतन्य की शुद्धि प्रगट हो, ऐसा ही बल है। अशुद्धि को प्रगट करे, ऐसा उसमें बल है ही नहीं। वह तो पर्याय में अद्धर से करता है। उसके अनन्त गुण में कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार-शुभरूप हो। अनन्त गुण में से एक गुण ऐसा नहीं है कि शुभरूप हो। शुभ अद्धर पर्याय में से अध्धर से होता है। आहाहा! ऐसा है। साधारण लोगों ने कभी सुना न हो, उन्हें ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं ऐसा यह? यह सब चलता है न अभी, सब मिथ्या? मिथ्या-सच्चे का निर्णय तू कर। बापू! तेरा नाथ अन्दर पड़ा है। आहाहा!

यह कहते हैं, देखो न? कैसा है? कि **हृदय में विलसित...** अन्दर में पड़ा है। **शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्ड...** सर्वोत्तम चैतन्यपिण्ड। **इस पद को जानकर...** आहाहा! **पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं।** और राग से लाभ होगा, यह कहाँ से लगा तू? तू मुनि है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनिराज मुनि को कहते हैं। भगवान! आहाहा! तूने बाहर का सब जानपना किया, परन्तु सर्वोत्कृष्ट प्रभु चिदपिण्ड आत्मा, और जो **हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप...** उसमें जाने के लिये बात नहीं करता और शुभराग कर, ऐसी तू प्ररूपणा करता है, प्रभु! वह कहीं मुनिपना है? आहाहा!

मुमुक्षु : श्रावक के लिये तो शुभराग है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक भी नहीं। श्रावक है, वह तो शुभराग आता है, ऐसा जानता है कि यह हेय है, दुःख है। मेरी कमजोरी के कारण यह होता है, इतनी अपेक्षा से श्रावक

को धर्म कहा है न! धर्म का अर्थ यह कि मुझसे अभी वीतरागता नहीं होती, इसलिए अशुभ से बचने के लिये मैं शुभ में आता हूँ, इसलिए उसे श्रावक का धर्म कहा है। श्रावक की शैली में, उसकी रीति में, पद्धति में इतना होता है परन्तु मुनि को नहीं होता, तथापि उस श्रावक को भी राग से धर्म होता है, ऐसी मान्यता नहीं होती। आहाहा! वहाँ तो ऐसा है। आहार-पानी को सदोष करना... इत्यादि यह तो श्रावक का धर्म है, ऐसा कहा। इसका अर्थ उसकी भूमिका में आता है, इतनी बात है, दूसरा कुछ नहीं। आहाहा! यहाँ तो मुनि को कहते हैं कि प्रभु! तू कहाँ गया? तूने जानपना करके यह निकाला? आहाहा! शास्त्र पढ़कर तूने यह निकाला कि राग में धर्म होगा? राग से धर्म होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : राग से धर्म होगा, ऐसा नहीं कहा, शुभराग से धर्म होगा - ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस शुभराग से धर्म होगा, यह पाप है, मिथ्यात्व है। उसमें था, मिथ्यात्व, वह संसार है। कहा था न? मिथ्यात्व, वह संसार है। मिथ्यात्व जाने से सिद्धसदृश है। यह श्लोक में है। सवेरे कहा था। सिद्धसदृश है। कथन की शैली एक अपेक्षा से। एक ओर चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध कहे तथा एक ओर समकित हुआ, उसे सिद्धसदृश कहे, यह विवक्षा की अपेक्षा है। विवक्षा की विचित्रता है। इससे विरुद्धता नहीं है। यह कथन की विचित्रता है। उसमें तत्त्व की विरुद्धता नहीं है। आहाहा!

यह आस्रव में कहा है। ये शब्द आस्रव में आते हैं कि भाई! एक ओर आस्रव समकिती को आता नहीं, ऐसा कहते हो, और जघन्य ज्ञान में आस्रव आता है और बन्ध होता है, ऐसा कहते हो। यह विवक्षा की विचित्रता है। कथन की शैली क्या है, यह समझाया है। उसमें लिखा है। विवक्षा की विचित्रता है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा!

अरे! हृदय में विराजमान शुद्धज्ञानरूप भगवान और सर्वोत्तम चैतन्यपिण्ड, सर्वोत्तम पदार्थ। आहाहा! सर्वोत्तम पूर्ण बलवाला... आहाहा! उसे छोड़कर **जानकर पुनः भी...** उसे जानकर पुनः भी राग से लाभ होगा, यह लाया कहाँ से? यह तूने क्या किया? तू साधु है? आहाहा! बात कठिन पड़े, बापू! दुनिया के धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती।

मुमुक्षु : ....पूजा करो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो समझाते हैं। अशुभ से बचने के काल में शुभ क्रमबद्ध

में आता है, इतना। परन्तु उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं है। अशुभ के स्थान से टालने, अशुभ से टालने शुभ आता है, ऐसा तो पंचास्तिकाय में है, परन्तु उससे तुझे धर्म होगा और जन्म-मरण मिटेंगे, ऐसा उपदेश तू कहाँ से लाया? तू मुनि है? आहाहा! मुनि होवे तो ऐसा करे?

सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद को जानकर... आहाहा! भगवानस्वरूप चैतन्यपिण्ड प्रभु आनन्द का सागर है। उसे जानकर भी... आहाहा! **पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं।** उसमें राग है नहीं, ऐसा तो तूने जाना है तथापि और वापस राग से धर्म मनावे। उसमें जो हो, उससे उसमें लाभ होगा। तो राग कहीं आत्मा में नहीं है; इसलिए आत्मा में नहीं है, उससे लाभ होगा, यह बात होती ही नहीं। आत्मा में जो द्रव्य में हो, दर्शन-ज्ञान-आनन्द उसमें है तो उनसे उसे लाभ होता है। आहाहा!

सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद को जानकर... देखा? **इस पद को जानकर...** आहाहा! ऐसी बुद्धि तुझे कहाँ से आयी? **सरागता को प्राप्त होते हैं। पुनः भी सरागता को प्राप्त होते हैं।** आहाहा! राग से रहित ऐसा भगवान आत्मा तूने जाना, ऊँची चीज़ है, (ऐसा जाना) तथापि और पुनः राग से आत्मा को लाभ होगा, यह तुझे क्या हुआ? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)